

आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त

दिनचर्या (भाग 2)

(vii) गण्डूष या कवल:- गण्डूष उसे कहा जाता है, जिसमें मुख में असज्जारी मुख दायें से बायें फेरी जाती है। इसके लिए तिल या सरसों का तैल के प्रयोग को उत्तम कहा गया है। गण्डूष से ओठों का फटना, मुख का सूखना, दाँतों के रोग तथा स्वरादि भेद नहीं होता है। कवल दो अरुचि, मुख की विरसता, मलिनता, दुर्गन्धता इत्यादि का नाश हो जाता है।

(viii) अभ्यंग:- आयुर्वेद मतानुसार प्रतिदिन शरीर पर अभ्यंग अर्थात् तैल की मालिश करनी चाहिए। इससे शरीर बुढ़ापा रहित, थकान रहित और वायु के नष्ट होने स्वस्थ रहता है। दृष्टि निर्मल हो जाती है, शरीर बलवान् होता है। आयु बढ़ती है। नींद ठीक प्रकार से आती है और त्वचा निर्मल, स्वच्छ, शरीर दृढ़ हो जाता है। तैल मालिश लोम के अनुरूप करना चाहिए, अधिक जल्दी या जोर लगाने की आवश्यकता नहीं होती है। धूप में या मालिश से तैल शरीर में जल्दी सूख जाता है। सिर, कान और पैर के तलवों का विशेष रूप से प्रतिदिन अभ्यंग करना चाहिए। पैरों में प्रतिदिन तेल लगाने से नेत्र की ज्योति बढ़ती है, शुष्कता, खुदरापन, थकावट, पैरों का फटना, आदि नहीं होते हैं। कान में भी प्रतिदिन तेल डालना चाहिए, इससे कान दर्द, बहरापन, हनुभूत, कान के रोग इत्यादि नहीं होते हैं, सिर पर तेल लगाने से बालों के गिरना रुकता है, सफेद बालों में कमी होती है, सिरदर्द नहीं होता है। चेहरे की त्वचा भी कांतिवर्धक होती है। कफ से पीड़ित, वमन-विरेचन से जिसने शरीर का शोधन किया है और अजीर्ण रोगी को अभ्यंग नहीं करना चाहिए।

(ix) व्यायाम:- वाग्भट्ट के अनुसार 'शरीरायासजनं कर्म व्यायामसंज्ञितम्' अर्थात् जिस कार्य से शरीर में थकान का अनुभव हो, उसको व्यायाम कहा जाता है। प्रतिदिन व्यायाम करने से शरीर सुदृढ़ और बलवान् बना रहता है। व्यायाम अभ्यंग के पश्चात् करने से शरीर का तैल अच्छी तरह शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। आयुर्वेद मतानुसार शक्ति से अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए, वह शरीर का नुकसान दे सकता है। व्यायाम अपनी आधी शक्ति अर्थात् माथे पर पसीना आना तक करना चाहिए। व्यायाम वात-पित्त रोगी, बालक, वृद्ध और अजीर्ण रोगी को नहीं करना चाहिए। सभी ऋतुओं में व्यायाम करना चाहिए। हेमन्त, शिशिर और बसन्त ऋतुमें अपनी आधी शक्ति से व्यायाम करें। अन्य शेष ग्रीष्म, वर्षा, और शरद् ऋतु आधी शक्ति से भी थोड़ा व्यायाम करना चाहिए। थकान का अनुभव होने पर व्यायाम छोड़ देना चाहिए। व्यायाम करने के पश्चात् सम्पूर्ण शरीर को सुखपूर्वक इस प्रकार करें जिससे किसी प्रकार का कष्ट न हो और शरीर की थकान नष्ट हो जाए। व्यायाम करने से शरीर में लघुता, कार्यक्षमता तथा जठराग्नि अधिक बलशाली हो जाती है। व्यायाम सदैव अपनी यथा शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए। व्यायाम से शरीर दृढ़ हो जाता है।

(x) उद्धर्तन या उबटन:- कषाय आदि चूर्ण या कल्क के द्वारा शरीर की मालिश करना, उबटन या उद्धर्तन कहलाता है। यह उबटन भी रुक्ष और स्निग्ध भेद के कारण दो प्रकार का कहा जाता है। उबटन के लिए सरसों के चूर्ण में दूध मिलाकर, चने के बेसन में तेल मिलाकर या दही की मलाई में तैल मिलाकर उबटन करना चाहिए। उबटन लगाने से कफ का नाश, मेद का विलीन, अङ्ग का स्थिर होना और त्वचा का निर्भर होना कहा गया है। इस उबटन क्रिया से शरीर के रोमकूप खुलते हैं और शरीर के अङ्ग स्थिर हो जाते हैं।

(xi) स्नान:- स्वस्थ व्यक्ति प्रतिदिन स्नानादि व्यवहार करना चाहिए। इससे शरीर स्वस्थ रहता है और मन प्रसन्न रहता है। स्नान कर्म आयुर्वेद के अनुसार अग्निदीपक, वृष्य (मन की प्रसन्नता) आयु बढ़ाने वाला, उत्साह वर्धक और बल देने वाला होता है। यह शरीर की खुजली, मल, थकान, पसीना, तन्द्रा, प्यास, दाह और पाप का नाश करने वाला होता है। गर्म पानी से शरीर के निचले भाग को परिषेक करना चाहिए। अधोभाग के लिए शीतल जल का ही प्रयोग करें। गर्म पानी इन्हें नुकसान पहुंचाता है। सिर और आँखों को गर्म पानी हानि पहुंचाता है, जिससे इनकी शक्ति क्षीण हो सकती है। अर्दित रोगी, नेत्ररोगी, मुखरोगी, कर्णरोगी, अतिसार, पीनस और अजीर्ण रोगी इत्यादि को स्नान नहीं करना चाहिए। स्नान करने से रोग की वृद्धि हो सकती है।

(xii) भोजन:- आयुर्वेद के अनुसार पूर्व में ग्रहण किए आहार के जीर्ण होने अर्थात् पच जाने पर हितकारी और पथ्य भोजन उचित मात्रा में खाना चाहिए। भोजन को अपनी इच्छानुसार, प्रवृत्ति अनुकूल ही लेना चाहिए यदि किसी ग्रसित है, तो उसे शान्त करने का उपाय करें, तत्पश्चात् जिह्वानुसार भोजन का ग्रहण करें। भोजन को पवित्र होकर, प्रसन्न होकर, अग्नि में हवनादि से

निवृत्त होकर, मौन रहकर करना चाहिए। शत्रु, गणिका, धूर्त तथा पणिक का अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। सद् आहार से या आहार की शुद्धि से सत्त्व की शुद्धि होती है। सत्त्व की शुद्धि से बुद्धि निर्मल और निश्चयी होती है। सभी समय व्यक्ति को उचित मात्रा में खाना चाहिए, क्योंकि अधिक मात्रा में खाया भोजन सभी दोषों को प्रकुपित कर देता है और अत्यन्त भोजन बल, पुष्टि, कान्ति के लिए पर्याप्त नहीं होता है। वह वात रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है।

(xiii) सवृत्त या आचरण:- विधि एवं निषेध के द्वारा सद्वृत्त का उपदेश पालन करना चाहिए। आयुर्वेद का सुख आरोग्य है। सभी प्राणियों की सभी प्रवृत्तियाँ सुख के लिए होती हैं। सुख के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। इसलिए प्राणि मात्र को धर्मानुकूल आचरण करना चाहिए। सत्कार्य में प्रेरणा देने वाले और सहायक मित्रों में आस्था रखनी चाहिए; किन्तु असत्कार्यों में प्रेरणा देने वाले या सहायकों से दूरी बनाकर रखना चाहिए। 'त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत्तं या विरोधयन्' अर्थात् धर्म, अर्थ और काम से रहित कोई कार्य न करे और इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करे, जिससे इनमें आपसी विरोध न हो सके। लोकाचार का पालन करें। क्योंकि सभी क्रियाओं में समाज ही आचार्य स्वरूप होता है, लौकिक व्यवहार में लोक (समाज) का ही अनुकरण करना चाहिए। इन्द्रियों को वश में रखकर कार्य करना चाहिए।

इस प्रकार संक्षेप में मनुष्य की दिनचर्या किस प्रकार की होनी चाहिए। यह आयुर्वेदानुसार कहने का प्रयास किया गया है। क्या-क्या करना चाहिए या क्या-क्या नहीं करना चाहिए इन सभी का उपर्युक्त समावेश करने का प्रयास किया गया है।

Lecture by-

Dr. Ritu Mishra

Department of Sanskrit

Shivaji College.